International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

भारतीय राजनीति में दलित नेतृत्व की भूमिका

Mahesh Kumar
Assistant professor (political science)
Government college Raipur, Bhilwara

सार

राजनेताओं और दलों ने डा. भीमराव अंबेडकर और कथित दलित उत्थान की राजनीति को अपने राजनीतिक हितों का साधन और साध्य बना लेने से ज्यादा कुछ नहीं समझा। अतएव जो दलित एक समय मायावती की बसपा के सेवक थे, वे भाजपा और अब समाजवादी पार्टी के दर पर नतमस्तक हो रहे हैं। इनमें ज्यादातर अति पिछड़े और दलित हैं। कमोबेश इसे ही स्वार्थपरक अवसरवादी राजनीति कहते हैं। साफ है, इनके लिए अंबेडकरवादी दर्शन का आदर्श स्व हित से आगे नहीं बढ़ पाया। मायावती ने भी अंबेडकर के जातिविहीन सामाजिक दर्शन को पूंजी और सामंती वैभव के भोग का पर्याय मान लिया। भविष्य में निर्मित होने वाली इन स्थितियों को शायद अंबेडकर ने 1956 में ही भांप लिया था। गोया, उन्होंने आगरा में भावुक होते हुए कहा था कि उन्हें सबसे ज्यादा उम्मीद दलितों में पढ़े–लिखे बौद्धिक वर्ग से थी कि वे समाज को दिशा देंगे लेकिन इस तबके ने हताश ही किया है।

दरअसल अंबेडकर का अंतिम लक्ष्य जाति विहीन समाज की स्थापना थी। जाति टूटती तो स्वाभाविक रूप से समरसता व्याप्त होने लग जाती। लेकिन देश की राजनीति का यह दुर्भाग्यपूर्ण पहलू रहा कि नेता सवर्ण रहे हों या अवर्ण जाति, वग भेद को ही आजादी के समय से सत्तारूढ़ होने का मुख्य हथियार बनाते रहे हैं।

आज मायावती को सबसे ज्यादा किसी तात्विक मोह ने कमजोर किया है तो वह है, धन और सत्ता लोलुपता। जबकि अंबेडकर इन आकर्षणों से सर्वथा निर्लिप्त थे। भारत ऐसा भुक्तभोगी देश रहा ह कि जब वह सोने की चिड़िया कहा जाता था, तब उसे मुगलों ने लूटा और फिर अंग्रेजों ने। अंग्रेजों ने तो भारत के सामंतों और जमींदारों को इतनी निर्ममता से लूटा कि इंग्लैंड के औद्योगिक विकास की नींव ही भारत की धन–संपदा के बूते रखी गई। यहां के किसान और शिल्पकारों से खेती और वस्तु निर्माण की तकनीकें हथियाईं।

मुख्य शब्द

समाज, राजनेता, दल, सांसद, जातिगत

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

भूमिका

बहुजन समाज पार्टी का वजूद खड़ा करने से पहले कांशीराम ने लंबे समय तक डीएस–4 के माध्यम से दलित हितों के लिए संघर्ष किया था। इसी डीएस–4 का सांगठनिक ढांचा स्थापित करते समय बसपा की बुनियाद पड़ी और समूचे हिंदी क्षेत्र में बसपा के विस्तार की प्रक्रिया आरंभ हुई। कांशीराम के वैचारिक दर्शन में दलित और वंचितों को करिश्माई अंदाज में लुभाने का चुंबकीय तेज था। फलस्वरूप बसपा एक मजबूत दलित संगठन के रूप म स्थापित हुई और उत्तर–प्रदेश में चार बार सरकार बनाई। अन्य प्रदेशों में बसपा के विधायक दल–बदल के खेल में भागीदार बनकर सरकार बनाने में सहायक बने। किसी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होने पर समर्थन का टेका लगाने का काम भी किया। केंद्र में मायावती यही भूमिका अभिनीत करके राज्यसभा सांसद बनती रहीं। इन साधनों के साध्य के लिए मायावती ने सामाजिक अभियांत्रिकी (सोशल इंजीनियरिंग) जैसे बेमेल प्रयोगों का भी सहारा लिया। इन प्रयोगों का दायित्व किसी दलित को सौंपने की बजाय, सनातनी ब्राह्मण सतीष मिश्रा के सुपुर्द किए। मसलन सत्ता प्राप्ति के लिए जातीय समीकरण बिठाने में मायावती पीछे नहीं रहीं।

अंबेडकर ने जाति विहीन समाज की पुरजोर पैरवी की थी। लेकिन कर्मचारी राजनीति के माध्यम से जातिगत संगठन बसपा की पृष्ठभूमि तैयार करने वाले कांशीराम ने अंबेडकर के दर्शन को दरकिनार कर कहा कि अपनी–अपनो जातियों को मजबूत करो। यह नारा न केवल बसपा के लिए प्रेरणास्रोत बना बल्कि मंडलवादी मुलायम सिंह, लालू प्रसाद, शरद यादव और नीतीश कुमार ने भी इसे अपना–अपना, परचम फहराने के लिए सिद्ध मंत्र मान लिया। गोया, इन नेताओं ने अंबेडकर द्वारा स्थापित जाति तोड़ो आंदालन को जाति सुरक्षा आंदोलन में बदल दिया। इसीलिए मंडल आयोग की पिछड़ी जातियों को आरक्षण की सिफारिशें मान लेने के बाद अब जातिगत जनगणना की बात पुरजोरी से उठाई जा रही है, जिससे संख्या बल के आधार पर जातिगत आरक्षण व्यवस्था सरकारी नौकरियों के साथ–साथ विधायिका में भी की जा सके।

सतीश मिश्रा के बसपा में आगमन के बाद सामाजिक अभियांत्रिकी का बेमेल तड़के का सिलसिला तो शुरू हुआ ही, जिन लोगों को मायावती मनुवादी कहकर ललकारा करती थीं, उन्हीं मनुवादियों के कर्मकांड बसपा के मंचों पर सत्ता प्राप्ति के लिए अनिवार्य अनुष्ठान बन गए। चुनावी साभाओं में हवन कुंड बनाए जाने लगे और वैदिक मंत्रों के उच्चारण के साथ भगवान परशुराम के सोने–चांदी के फरसे प्रतीक के रूप में मायावती को भेंट किए जाने लगे। तिलक, तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार का जो नारा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को बतौर गाली दिया जाता था, वह हाथी नहीं गणेश हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं के सनातनी संस्कार में बदल गया।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

मायावती ब्राह्मणों की लाचारी दूर करने के बहाने कहने लगीं, ब्राह्मण हशिए पर चले गए हैं, इसलिए उनकी खोई गरिमा लौटाने का काम हम करेंगे। इस गौरव के पुनर्वास के लिए मायावती ने 2017 में उत्तर–प्रदेश के विधानसभा चुनाव से ठीक पहले मुख्यमंत्री रहते हुए विधानसभा से आर्थिक रूप से कमजोर सवर्णों को 10 प्रतिशत आरक्षण के प्रस्ताव का टोटका रचकर भारत सरकार को कानून बनाने के लिए भेजा। स्वार्थपूर्ति के लिए किए जाने वाले इन आडंबरों से पता चलता है कि हमारे निर्वाचित जनप्रतिनिधि जिस संविधान के प्रति निष्ठा व अक्षरशरू पालन की शपथ लेते हैं, उसे पढ़ने–समझने की आवश्यकता ही अनुभव नहीं करते।

यहीं नहीं वे जिस दल के सदस्य होते हैं और उस दल के जिस नेता के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, उनके गुणगान करने में थकते नहीं हैं, अमूमन उसी व्यक्ति की विचार–प्रक्रिया को पलीता लगाते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अंबेडकर की चिंता ठीक थी कि मेरी चिंता इस बात के अहसास से गहरी हो जाती है कि जातिवाद और पंथवाद के रूप में मौजूद भारत की बुराइयों व कुरीतियों के कारण विभिन्न राजनीतिक दल अस्तित्व में आ सकते हैं। आज देश में करीब 1400 राजनीतिक दल हैं, जिनका प्रमुख आधार धर्म, जाति और क्षेत्रवाद है।

देशभर में दलितों की आबादी 16 प्रतिशत है। पंजाब में 30, पश्चिम बंगाल में 23, उत्तर–प्रदेश में 21 और महाराष्ट्र में 10.5 फीसदी दलित आबादी है। चूंकि अंबेडकर महाराष्ट्र से थे, इसलिए ऐसा माना जाता है कि सबसे ज्यादा दलित चेतना महाराष्ट्र में है। दलित आंदोलनों की भूमि भी महाराष्ट्र रहा है। डॉ. अंबेडकर ने यहीं रिपब्लिकन ऑफ इंडिया (आरपीआई) राजनीतिक दल का गठन किया था। लेकिन इस पार्टी के अब तक करीब 50 विभाजन हो चुके हैं। इसके कर्ताधर्ता अंबेडकर के पोते प्रकाश अंबेडकर हैं। इसी दल से निकले रामदास अठावले ने अपनी पार्टी आरपीआई–ए गठित की हुई है। उनकी मंशा भाजपा–शिवसेना तो कभी कांग्रेस–एनसीपी को समर्थन देकर सत्ता में बने रहने की रही है। यही पदलोलुपता महाराष्ट्र में दलित वर्ग को सबसे ज्यादा असंगठित किए हुए है।

इस नाते मायावती के इस करिश्मे को मानना पड़ेगा कि वे उत्तर–प्रदेश में अपना 22 प्रतिशत वोट 2014 और 2019 के लोकसभा चुनाव में स्थिर रखने में सफल रही हैं। हालांकि 2014 में बसपा एक भी सीट नहीं जीत पाई। 2017 के विधानसभा चुनाव में भी उन्हें लगभग इतना ही वोट मिला था। इसी वोट की माया रही कि अगड़े और पिछड़े थैलियां लेकर उनसे बसपा का टिकट लेने की कतार में लगे रहे। किंतु अब यह मिथक टूटने को आतुर दिखाई दे रहा है। इस एक जातीय कुचक्र के टूटने भर से अन्य राजनीतिक दलों का जातिगत कुचक्र भी टूटेगा, ऐसा फिलहाल नहीं लग रहा है। गोया, जातीय गठबंधन के कुचक्र बने रहेंगे।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

भारतीय राजनीति में दलित नेतृत्व की भूमिका

महाराष्ट्र में ज्योतिराव फुले के नवजागरण के उपरांत जो दलित चेतना उभरी, उसका राजनैतिक प्रभाव हमें 1923 में देखने को मिलता है, जब बम्बई की विधान परिषद ने यह प्रस्ताव पारित किया कि सभी सार्वजनिक सुविधाओं और संस्थाओं का उपयोग करने का दलित वर्गों के लोगों को भी समान अधिकार होगा। आपने पिछले अध्याय में देखा कि महाड़ में अछूतों का, पानी के लिये सत्याग्रह, इसी अधिकार को प्राप्त करने के लिये था। यह वस्तुतः वह संघर्ष था, जिसने तत्कालीन राष्ट्रीय परिदृश्य में राजनीति के तीसरे ध्रुव (दलित राजनीति) को जन्म दिया। इसी तीसरे ध्रुव की राजनीति ने दलित वर्गों को सत्ता में भागीदारी दिलाई।

दलित राजनीति का विकास किस तरह हुआ, मैं क्रमशः उसका चरणबद्ध वर्णन यहाँ करूँगा, जो राष्ट्रीय आन्दोलन के समय से आज तक के विकास का एक जायजा है। लेकिन सबसे पहले यह बताना जरूरी है कि जिन परिस्थितियों में दलित राजनीति का उदय हुआ, वे क्या थीं?

यहा यह बात समझने की है कि जो स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा जा रहा था, उसके केन्द्र में दलित–मुक्ति का प्रश्न नहीं था। दूसरी बात यह समझने की है कि राजनीति में दलित प्रश्न किस तरह शामिल हुआ? प्रथम विश्वयुद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने 1919 के अधिनियम में संवैधानिक सुधार करने के लिये विचार किया। काँग्रेस और हिन्दू नेताओं ने मुसलमानों के पृथक राजनैतिक अधिकारों तथा हितों को स्वीकार कर लिया था। इस समझौते में यह चिन्ता नहीं थी कि दलित वर्गों के भी कुछ हित हैं और उन्हें भी राजनैतिक अधिकार मिलने चाहिए। यह स्थिति दलित वर्ग के लिये चिंताजनक थी। उन्हें भय था कि यदि अँग्रेजों ने भारत को आजाद कर दिया, तो यह आजादी दलितों के लिये क्या महत्व रख सकती है? डा. आंबेडकर ने साउथबरो समिति के समक्ष, जिसने वैधानिक सुधारों पर अपनी रिपोर्ट दी थी, साक्ष्य में कहा था कि दलितों को प्रायः दया का पात्र समझा जाता है, पर किसी भी राजनैतिक योजना में उनकी यह कहकर उपेक्षा कर दी जाती है कि उनके कोई हित नहीं हैं, लेकिन वास्तव में उनके ही हित ऐसे हैं, जिनकी रक्षा की सबसे बड़ी जरूरत है। इसलिये नहीं कि उनके पास कोई धन–जायदाद है, जिसे हड़पे जाने से बचाना है, बल्कि उनका तो सबकुछ छीन लिया गया है। इसलिये सिर्फ धन–जायदाद से सम्बन्धित हित मानव–मात्र के बुनियादी हितों के सामने नगण्य है।

साउथबरो कमेटी ने दलितों के साथ न्याय नहीं किया। उसने दलितों की निर्वाचन की माँग को स्वीकार नहीं किया, बल्कि उनके लिये मनानयन की व्यवस्था की सिफारिश की। इस कमेटी ने यह व्यवस्था इस आधार पर दी कि दलित वर्गों के मतदाताओं की संख्या संतोषजनक नहीं थी। डा. आंबेडकर ने, बहिष्कृत हितकारिणी सभा की ओर से, जिसके वे अध्यक्ष थे, इस सिफारिश का विरोध्

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

किया। 1927 में ब्रिटिश सरकार न भारत की संवैधानिक समस्या को सुलझाने के लिये साइमन कमीशन नियुक्त किया। यह कमीशन दलित वर्गों के लिये भी संवैधानिक संरक्षणों की सिफारिश करने वाला था। किन्तु काँग्रेस और हिन्दू महासभा ने कमीशन का देशव्यापी बहिष्कार किया। बहिष्कार में मुस्लिम लीग का भी एक गुट शामिल था। लेकिन दलित वर्गों ने कमीशन का स्वागत किया था। इस स्वागत का एक कारण यह था कि कमीशन में कोई भी भारतीय सदस्य शामिल नहीं किया गया था। भारतीय सदस्य दलित वर्गों के हितों की उपेक्षा कर सकते थे। दलित वर्गों को उनके ऊपर बिल्कुल विश्वास नहीं था। बहुत से गाँवों में हिन्दुओं ने यह किया कि जब कमीशन वहाँ पहुँचा तो हिन्दुओं ने कुछ अछूतों को साफ कपड़े पहनाकर कमीशन के सामने उपस्थित कर और उनसे यह कहलवा दिया कि उनके साथ कोई भेदभाव नहीं होता है और उन्हें अलग राजनैतिक अधिकार नहीं चाहिए। लेकिन हिन्दुओं की यह चालाकी डा. आंबेडकर के साक्ष्य के सामने विफल हो गई। उन्होंने कमीशन को न केवल दलितों की वास्तविक संख्या से अवगत कराया, बल्कि उसके आधार पर यह माँग भी की कि दलित वर्गों को हिन्दुओं से अलग एक विशिष्ट अल्पसंख्यक वर्ग माना जाये और उनके लिये मुसलमानों की तरह का प्रतिनिधित्व दिया जाये। उन्होंने मनोनयन के सिद्धांत का विरोध् किया और निर्वाचन पद्धति की माँग की थी।

1929 में, जब साईमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट दी तो उसका भी काँग्रेस और हिन्दू महासभा ने व्यापक विरोध किया। एक हिन्दू नेता ने उसकी तुलना मिस मेयो की पुस्तक मदर इंडिया से की, तो अन्य हिन्दू नेताओं ने उसे प्रतिक्रियावादी रिपोर्ट की संज्ञा दी। लगभग उसी समय भारत के भावी संविधान की रूपरेखा तय करने के लिये लंदन में गोलमेज सम्मेलन की घोषणा हुई। इस सम्मेलन में दलित वर्गों के प्रतिनिधि के रूप में डा. आंबेडकर और श्री आर. श्रीनिवास को आमंत्रित किया गया था। इस सम्मेलन में, जो तीन चरणों में हुआ था, डा आंबेडकर ने दलित वर्गों के संवैधानिक अधिकारों के लिए उसकी अल्पसंख्यक समिति को एक ज्ञापन दिया, जिसमें उन्होंने दलित वर्गों के लिये पृथक निर्वाचन मंडल की माँग की थी। ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अपने निर्णय में, जिसे इतिहास में कम्यूनल अवार्ड के नाम से जाना जाता है, दलित वर्गों की इस माँग को स्वीकार कर लिया। काँग्रेस और हिन्दू महासभा ने इस निर्णय में दलित वर्गों के लिये पृथक अधिकारों को मानने से इन्कार कर दिया। उस समय गाँधी पूना की येरवदा जेल में थे। उन्होंने जेल में ही दलित वर्गों के पृथक अधिकारों के खिलाफ आमरण अनशन शुरु कर दिया। अंततः तमाम दबावों के बाद दलित नेताओं और हिन्दू नेताओं के बीच समझौता हुआ, जिसे डा. आंबेडकर और गाँधी जी ने अंतिम रूप दिया। यह समझौता 1932 में हुआ, जो पूना–पैक्ट के नाम से जाना जाता है।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

दलित आन्दोलन के राजनैतिक विकास का यह पहला चरण था, जिसने एक तीसरे राजनैतिक ध्रुव के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज कर एक बड़ी सफलता हासिल की थी। इसने समकालीन साम्प्रदायिक राजनीति में हिन्दू और मुस्लिम दोनों समुदायों के नेताओं को यह अनुभव करा दिया था कि जाति भी भारतीय समाज की एक बहुत बड़ी सच्चाई है, जिसे उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यह सच है कि दलित नेतृत्व ने स्वतन्त्रता–संग्राम का समर्थन नहीं किया था, पर उसके मूलभूत कारणों को जाने बिना दलित नेतृत्व के सम्बन्ध में एकतरफा राय कायम करना गलत होगा। दरअसल दलित नेतत्व, जिसे हिंदू नेता प्रतिक्रियावादी मानते थे, आत्मरक्षा की स्थिति में था। यदि वह राष्ट्रीय आन्दोलन या स्वतन्त्रता–संग्राम में अलग–थलग था, तो इसके जिम्मेदार स्वयं काँग्रेस और हिन्दू महासभा के नेता थे। इन हिन्दू नेताओं ने, जिनमें गाँधी जी भी शामिल थे, मुसलमानों के राजनैतिक अधिकारों को मान लिया था, क्योंकि धर्म के आधार पर उनके लिये वह एक पृथक अल्पसंख्यक समुदाय था। इसी आधार पर वे सिखों और ईसाईयों के लिये भी पृथक राजनैतिक अधिकार देने को तैयार थे, हालाँकि वे दलितों को हिन्दू मानते थे, पर वे उनकी किसी भी राजनैतिक योजना में शामिल नहीं थे। दलितों की सामाजिक स्थिति को देखते हुए और उनके प्रति सवर्णों के अमानवीय व्यवहार को नजर में रखते हुए डा. आंबेडकर का मत था कि दलित हिन्दुत्व के अंग नहीं हैं, वे उसमें दास वर्ग हैं, इसलिये दलित वर्ग भी एक पृथक समुदाय हैं। काँग्रेस और हिन्दू महासभा के राजनैतिक एजेण्डे में दलित–मुक्ति की कोई कार्य–योजना नहीं थी।

दलित नेतृत्व की चिन्ता यह थी कि देश आजाद हुआ तो आजादी का वास्तविक उपयोग हिन्दू और मुसलमान ही करेंगे, दलितों को उससे वंचित ही रहना है। इस चिन्ता का मुख्य कारण यह था कि काँग्रेस और हिन्दू महासभा के पास आजादी की कोई स्पष्ट रूपरेखा और परिकल्पना नहीं थी। अँग्रेजों से मुक्ति के बाद आजाद भारत की सरकार का स्वरूप क्या होगा और सत्ता किनके हाथों में आयेगी, यह अनिश्चय की स्थिति में था। इसलिये डा. आंबेडकर को कहना पड़ा था, अछूतों को डर है कि भारत की हिन्दू राज स्थापित करेगी और अछूतों के लिये दरवाजे बंद हो जायेंगे। सदैव के लिये उनके जीवन की सभी आशाएँ, स्वतन्त्रता और उनकी खुशियों के स्रोत बंद हो जायेंगे तथा वे केवल लकड़ी चीरने वाले और पानी खींचने वाले ही बना दिये जायेंगे।

डा. आंबेडकर ने काँग्रेस की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए लिखा, जब यह पूछा जाता है कि स्वतन्त्र भारत के संविधान के सम्बन्ध् में क्या होना चाहिए? काँग्रेस का उत्तर होता है कि लोकतन्त्र होगा। जब यह पूछा जाता है कि लोकतन्त्र किस प्रकार का होगा, तो काँग्रेस का उत्तर होता है कि यह वयस्क मताध्किार पर आधारित होगा। वयस्क मताध्किार के अतिरिक्त संविधान में क्या ऐसे भी संरक्षण प्रदान किये जायेंगे, जो हिन्दू साम्प्रदायिक बहुमत के अत्याचारों को रोकने में सक्षम होंगे? काँग्रेस का उत्तर

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

पूर्णतया नकारात्मक होता है।, दलित वर्ग के लोग हिन्दुओं के अत्याचारों से सुरक्षा के लिये संवैधानिक संरक्षणों की गारंटी चाहते थे, जिसके लिये काँग्रेस तैयार नहीं थी। काँग्रेस कहती थी कि आजादी मिलने के बाद ही संरक्षणों की माँग की जानी चाहिए। दलित नेतृत्व इसके लिये तैयार नहीं था, क्योंकि उसके पास इतिहास के कटु अनुभव थे। उनके सामने नीग्रो का उदाहरण था। अमेरिका के सिविल वार में 37 हजार नीग्रो सैनिकों ने अपनी जानें गँवाई थीं, परन्तु युद्ध की समाप्ति के बाद उनके साथ विश्वासघात हुआ। वहाँ ऐसे कानून बनाये गये, जिनसे नीग्रो को मताधिकार से वंचित रखा गया और उन्हें गुलाम बनाया गया। अतः दलित नेतृत्व ने कहा कि नीग्रो के उदाहरण को देखते हुए स्वतन्त्रता–संग्राम के सम्बन्ध में दलितों का रूख गलत नहीं है। दलित नेतृत्व का तर्क था कि भारत की स्वतन्त्रता उस धन के समान है, जिसका कोई रिसीवर होता है। इस समय रिसीवर की स्थिति में ब्रिटिश सरकार है। जैसे ही आपसी मतभेद दूर हो जायेंगे और भावी संविधन की रूपरेखा तय हो जायेगी, ब्रिटिश सरकार उस धरोहर को योग्य भारतीयों को सौंप देगी। तब दलित वर्ग इससे लाभ क्यों न उठाये? दलित नेतृत्व चाहता था कि देश की मुख्य समस्याओं को, जिनमें दलित–मुक्ति भी एक समस्या थी, ईमानदारी से समझौता करके निपटाने के बाद सामूहिक रूप से स्वतन्त्रता का दावा किया जाये। लेकिन काँग्रेस इस आधार पर स्वतन्त्रता की लड़ाई नहीं लड़ना चाहती थी। दलितों के प्रति काँग्रेस की उपेक्षा पर डा. आंबेडकर ने यहाँ तक कहा था, हम उतने मजबूत नहीं हो सकते, जितनी काँग्रेस है। हम संख्या में भी उतने नहीं हो सकते हैं। परन्तु हम सामाजिक जीवन के इस सिद्धांत में विश्वास करते हैं कि यदि हमें सूखी रोटी के सिवा कुछ और नहीं मिलता है, तो हमें उसी को अपने साथियों में बाँट लेना चाहिए। काँग्रेस सूखी रोटी के लिये पैदा नहीं हुई है। वह पूर्ण भोजन के लिये मैदान मे आई है और उस दावत में स्वयं ही तृप्त होना चाहती है। वह दूसरों को इससे वंचित रखना चाहती है। ठीक है, हम उनके हाथों में से थालियाँ छीनने में समर्थ नहीं हो सकते। परन्तु हम एक काम कर सकते हैं। हम उनके भोजन में मुट्ठी भर धूल फेंक कर भाग सकते हैं हालाँकि कम्यूनल अवार्ड में स्वीकृत पृथक निर्वाचक मंडलों और पृथक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध गाँधी के इस तर्क में दम था कि यह एक विशुद्ध धार्मिक मामला है। पृथक निर्वाचक मंडल स्वयं दलितों के लिये हानिकारक होंगे, क्योंकि वे जानते हैं कि सवर्ण हिन्दुओं के बीच उनकी क्या स्थिति है और किस प्रकार वे सवर्णों पर आश्रित हैं? क्या गाँधी हिन्दू समाज की सही तस्वीर पेश कर रहे थे या दलित वर्ग को भयभीत कर रहे थे? ये दोनों चीजें थीं और इसका प्रभाव दलितों के विरुद्ध पड़ना ही था। दलित नेतृत्व ने इसे अनुभव किया था और पूना–पैक्ट मे दलित पक्ष की विफलता का यही मुख्य कारण भी था।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

उपसंहार

भारत के भौगोलिक विस्तार की सीमाएं सिमट जाने का कारण भी पूंजी का निजीकरण और सामंतों की भोग–विलासी जीवन शैली रही है। दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत में भी प्रशासनिक व्यवस्था में यही दुर्गुण समाविष्ट होकर देश को दीमक की तरह चाट रहा है। दलित नेता व अधिकारी भी अधिकार संपन्न होने के बाद उन्हीं कमजोरियों की गिरफ्त में आते गए। इसीलिए अगड़े–पिछड़ों का खेल और दल–बदल की महिमा मतदाताओं के ध्रुवीकरण की कुटिल मंशा से आगे नहीं बढ़ पाई। यही वजह रही कि उत्तर–प्रदेश जैसे जटिल, धार्मिक व सामाजिक संरचना वाले राज्य में चार बार मुख्यमंत्री रह चुकीं मायावती आज चुनावी सरगर्मियों के बीच मौन व उदासीन हैं। यह उनकी राजनीतिक निष्क्रियता की घोषणा तो है ही, कालांतर में नेपथ्य में चले जाने का संकेत भी है। वरना, एक समय ऐसा भी था, जब इस दलित नेत्री से बसपा को अखिल भारतीय बना देने की उम्मीद की जा रही थी और दलितों में यह उम्मीद मायावती ने ही जगाई थी कि संगठन वह शक्ति है, जो प्रजा को राजा बना सकती है।

संदर्भ

1– बनर्जी, ए।, ग्रीन, डी।, मैकमैनस, जे।, और पांडे, आर। (2014)। क्या गरीब मतदाता इस बात के प्रति उदासीन हैं कि निर्वाचित नेता अपराधी हैं या भ्रष्ट? ग्रामीण भारत में एक शब्दचित्र प्रयोग। राजनीतिक संचार, 31(3), 391–407।

2– बनर्जी, एम। (2014)। भारत वोट क्यों देता है? नई दिल्ली रूटलेज

3– बीमन, एल।, पांडे, आर।, और सिरोन, ए। (2018)। एक पुरुष डोमेन के रूप में राजनीति और भारत में सशक्तिकरण। एस. फ्रांसेशेट, एम. एल. क्रुक, और जे.एम. पिस्कोपो (सं.) में, लिंग कोटा का प्रभाव (पीपी. 208–228)। न्यूयॉर्क, एनवाई ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

4– बेन–बस्सट, ए। और दहन, एम। (2019)। सामाजिक पहचान और मतदान व्यवहार। पब्लिक चॉइस, 151(1), 193–214.

5– बेस्ली, टी., पांडे, आर., राव, वी. (2019)। सिर्फ इनाम? दक्षिण भारत में स्थानीय राजनीति और सार्वजनिक संसाधन आवंटन। विश्व बैंक आर्थिक समीक्षा, 26(2), 191–216।

6– बोरूआ, वी.के. (2018)। भारत में भ्रष्टाचार एक मात्रात्मक विश्लेषण। इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 47 (28), 23–25।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 10 Issue 5, May- 2020
ISSN(o): 2249-7382 | Impact Factor: 6.939 |

7– ब्रीडिंग, एमई (2017)। कर्नाटक में वोट बैंक की सूक्ष्म राजनीति। आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 46(14), 71–77.

8– कोरब्रिज, एस।, हैरिस, जे।, और जेफरी, सी। (2018)। भारत आज अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज। कैम्ब्रिज, यूके पॉलिटी प्रेस।